साप्ताहिक
Live not just breaTHE

दि कार्मिक पोस्ट

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

वर्ष : 5, अंक : 38 (प्रति बुधवार), इन्दौर, 13 मई से 19 मई 2020 पेज : 4 कीमत : 3 रुपये

कोविड-19 एशिया-प्रशांत क्षेत्र के महासागरों के लिए बन सकता है वरदान

यूनाइटेड नेशन्स (संयुक्त राष्ट्र) की एक रिपोर्ट के मुताबिक, हर साल 8 मिलियन टन प्लास्टिक कचरा समुद्र में फेंका जाता है। इससे करीब 8 बिलियन डॉलर के बराबर मेराइन इकोसिस्टम को नुकसान होता है और साथ ही 1 मिलियन समुद्री पक्षी और 1 लाख समुद्री स्तनपायी जीव असमय मर जाते हैं। समुद्र के भीतर माइनिंग, तेल का रिसाव, केमिकल और न्यूक्लियर कचरा, महानगरीय सीवेज आदि अन्य प्रदूषकों का योगदान अलग से है।

2019 के एक अध्ययन के मुताबिक, हिन्द महासागर के एक द्वीप पर 238 टन प्लास्टिक कचरा पाया गया था। ये स्थिति उस हिन्द महासागर की है, जिसे 21वीं शताब्दी का सबसे प्रभावी भू-राजनैतिक और आर्थिक ताकत बताया जा रहा है। इसे भारत की ब्लू इकोनॉमी का आधार भी कहा जाता है। समुद्री पर्यावरण की ये दुखद स्थिति पूरे एशिया-पैसिफिक (एशिया-प्रशांत) क्षेत्र में फैले महासागरों की भी है। एशिया-प्रशांत क्षेत्र को मेराइन प्लास्टिक क्राइसिस का केन्द्र कहा जाता है।

ऐसी स्थिति में, यूनाइटेड नेशंस इकोनॉमिक एंड सोशल कमिशन फॉर एशिया एंड द पैसिफिक (ईएससीएपी) की नवीनतम रिपोर्ट उम्मीद की किरण जगाती है। ये रिपोर्ट बताती है कि कोविड-19 महामारी के कारण जिस तरह से समुद्री व मानव गतिविधियों, ऊर्जा की मांग, कार्बन उत्सर्जन में अस्थायी कमी आई है, उससे समुद्री पर्यावरण की रक्षा के लिए आवश्यक और बहुप्रतिक्षित उपायों को तलाशने और उसे आगे बढ़ाने में मदद मिल सकती है।

रिपोर्ट जारी किए जाने के मौके पर यूनाइटेड नेशंस की अंडर-सेक्रेटरी-जनरल और ईएससीएपी की एक्जीक्यूटिव सेक्रेटरी आर्मिदा सालिसिया एलिसजहबाना ने कहा, महासागरों के बेहतर स्वास्थ्य का सीधा संबंध एशिया और पैसिफिक क्षेत्र के सतत विकास से है। कार्बन उत्सर्जन और ऊर्जा मांग में कमी के रूप में, कोविड-19 महामारी ने समुद्री पर्यावरण की रक्षा के लिए हमारे सामने अवसर पेश किया है। हमें इस अवसर का लाभ उठाना होगा।

चेंजिंग सैल्स- एक्सेलेरेटिंग रिजनल एक्शन फॉर सस्टेनेबल ओसियंस इन एशिया एंड द पैसिफिक शीर्षक से प्रकाशित इस रिपोर्ट में कहा गया है कि एशिया-पैसिफिक क्षेत्र में समुद्री प्रदूषण, मछली पकडने की गतिविधियां और जलवायु परिवर्तन का दर जिस तेजी से बढ़ रहा है, उससे मेराइन इकोसिस्टम के अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा है। लेकिन, एशिया-पैसिफिक क्षेत्र के देश चाहे तो इसके संरक्षण और बेहतरी की दिशा में निवेश और प्रयास कर के तस्वीर बदल सकते है। रिपोर्ट के मुताबिक, इसके लिए पोस्ट कोविड-19 वर्ल्ड (कोरोना संकट के बाद की दुनिया) में इस क्षेत्र की सरकारों को समुद्री पर्यावरण संरक्षण के लिए दीर्घकालिक उपायों, मसलन ग्रीन शिपिंग, डी-कार्बनाइजेशन और हानिरहित फिशरीज, एक्वाकल्चर और टूरिज्म को अपनाना होगा।

रिपोर्ट में इस क्षेत्र के महासागरों की बेहतरी के लिए समुद्री डेटा को पारदर्शी तरीके से साझा करने और राष्ट्रीय सांख्यिकी प्रणाली में मजबूत निवेश करने का सुझाव दिया गया है। ईएससीएपी वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति का लाभ उठाने की आवश्यकता पर बल देते हुए महासागरों की रक्षा और दीर्घकालिक इस्तेमाल के लिए अंतर्राष्ट्रीय समझौतों और मानकों को लगातार लागू किए जाने की सिफारिश करता है।

एशिया और प्रशांत क्षेत्र के लिए यहां के महासागर बेहद महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र के महासागर सिर्फ मत्स्य पालन क्षेत्र में लगे 200 मिलियन से अधिक लोगों के लिए भोजन और कमाई का जरिया है। 80 प्रतिशत से अधिक अंतरराष्ट्रीय व्यापार शिपिंग के जरिए होता है। इसमें भी दो-तिहाई शिपिंग सिर्फ एशियाई समुद्रों के रास्ते होता है। लेकिन, दुखद रूप से एशिया-पैसिफिक के देश दुनिया के शीर्ष प्लास्टिक प्रदूषकों में शामिल हैं।

दुनिया भर के महासागरों में जाने वाले 95 प्रतिशत प्लास्टिक कचरे के लिए जिम्मेदार, दस नदियों में से आठ नदियां एशिया से हैं। इसमें भी गंगा नदी दूसरे स्थान पर है। ऐसे में नमामि गंगे जैसी योजना को समुद्री पर्यावरण के संरक्षण के साथ जोड़ कर देखे जाने की जरूरत है। क्या कोविड-19 संकट की पृष्ठभूमि में भारत सरकार अपनी ब्लू इकोनॉमी को बचाने पर ध्यान देगी?

पानी से जहरीले क्रोमियम को अलग करने वाला स्पंज बनाया

हेक्सावलेंट क्रोमियम दुनिया भर के जल स्त्रोतों को दूषित करता है, यह अत्यंत विषैला माना जाता है। सांस लेने या निगलने जाने से यह जान तक ले सकता है। इसका उपयोग करने के लिए यूरोप और दुनिया भर के कई देशों ने कठोर नियम बनाए है। यह जीनोटॉक्सिक माना जाता है, जिससे डीएनए को भारी नुकसान होता है और यह कैंसर के ट्यूमर का निर्माण करता है।

हेक्सावलेंट क्रोमियम केमिकल का उपयोग कई औद्योगिक प्रक्रियाओं में होता है। जैसे चमड़ा उद्योग, क्रोमियम की परत चढ़ाने, रंगीन कांच बनाने और पेंट पिगमेंट और स्याही में होता है। यह अक्सर पानी के साथ बहकर जल स्त्रोतों तक पहुंच जाता है तथा उन्हें प्रदूषित करता है। स्विट्जरलैंड के इकोले पॉलीटेक्निक फेडरेल डे लौसेन (ईपीएफएल) के रसायनज्ञ पानी से, इस हेक्सावलेंट क्रोमियम, प्रदूषण को दूर करने के लिए कम ऊर्जा खपत करने वाले उपकरण विकसित कर रहे हैं। दुनिया भर में सभी को स्वच्छ पानी प्रदान करना वर्तमान समय की सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। तेजी से पानी के प्रदूषण को दूर करने में सक्षम ऐसे उपकरण का विकास करना, वैश्विक स्तर पर मानव स्वास्थ्य और पर्यावरणीय कल्याण में सुधार के लिए महत्वपूर्ण है। यह शोध जर्नल ऑफ मैटेरियल्स केमिस्ट्री ए में प्रकाशित हुआ है।

क्वीन और सहकर्मी स्पंज जैसी एक सामग्री विकसित कर रहे हैं जो मिश्रण से विशिष्ट पदार्थों को एकत्र कर अलग कर सकते हैं। ये पदार्थ वास्तव में क्रिस्टल हैं, जिन्हें धातु-कार्बनिक ढांचा (मेटल आर्गेनिक फ्रेमवर्क, एमओएफ) भी कहा जाता है, और वैज्ञानिक इस विशेष पदार्थ की मदद से पानी से जहरीले पदार्थों को अलग करने की कोशिश कर रहे हैं।

यह सामग्री अत्यधिक छिद्रयुक्त होती हैं और इसकी सतह का क्षेत्र एक फुटबॉल मैदान जितना बड़ा हो सकता है। दूषित पदार्थ तब इन छिद्रों में प्रवेश करता है और सोखने की प्रक्रिया के दौरान आंतरिक सतह से चिपक जाते हैं। वैज्ञानिकों ने यह भी दिखाया कि उनका यह उपकरण अन्य पदार्थों के मिश्रण जैसे सोना, पारा और सीसे को सोख कर अलग कर सकता है। क्वीन की अगुवाई में ईपीएफएल के वैज्ञानिक बेरेंड स्मिट और बर्दिया वलीजादेह ने पानी से हेक्सावलेंट क्रोमियम को अलग करके दिखाया। हेक्सावलेंट क्रोमियम एक अपेक्षाकृत हल्का पदार्थ है जिसको लगभग 208 मिलीग्राम एमओएफ से निकाल सकते हैं। इसके अलावा, यदि एमओएफ पर प्रकाश डाला जाय, तो यह अत्यधिक विषैले हेक्सावेलेंट क्रोमियम को अपेक्षाकृत नॉनटॉक्सिक ट्रिटेंट क्रोमियम में बदल देता है।

शोधकर्ताओं ने कहा, प्रयोगशाला के बाहर पानी में से प्रदूषित पदार्थों को हटाने के लिए तथा तकनीक को लागू करने के लिए इस पर आगे और काम करने की आवश्यकता है।

क्वीन ने कहा उपकरण स्पंज के बारे में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसे बनाना आसान और सस्ता है। स्पंज का अगले चरण में बड़े पैमाने पर परीक्षण किया जाएगा, ताकि इस तकनीक को लागू किया जा सके।

पर्यावरण बचाने के लिए सरकार द्वारा किये जा रहे प्रयासों से संतुष्ट हैं 77 फीसदी भारतीय

दुनिया भर में करीब 63 फीसदी व्यस्क अपने देश द्वारा पर्यावरण संरक्षण के लिए किये जा रहे प्रयासों से संतुष्ट हैं। भारत में करीब 77 फीसदी लोग इस मामले में सरकार से संतुष्ट हैं। जबकि केवल 20 फीसदी लोग ही सरकार के कामों से असंतुष्ट हैं। यह जानकारी अमेरिका की प्रमुख पोलिंग एजेंसी गैलप द्वारा किये एक वैश्विक सर्वे में सामने आयी है। वहीं संयुक्त अरब अमीरात के करीब 93 फीसदी लोग सरकार द्वारा किये जा रहे प्रयासों से खुश हैं।

लेबनान की सरकार जिस तरह से हाल के वर्षों में पर्यावरण को लेकर काम कर रही है। उसे देखते हुए वहां केवल 10 फीसदी लोग ही सरकार से खुश हैं। जबकि अमेरिका और रूस में रह रहे लोग सबसे ज्यादा असंतुष्ट हैं। यदि दुनिया के 10 सबसे बड़े कार्बन उत्सर्जकों को देखें तो रूस में केवल 34 फीसदी संतुष्ट हैं। वहीं 59 फीसदी ने पर्यावरण के प्रति सरकार की जिमेदारी पर असंतोष दिखाया है। जबकि अन्य देशों में दक्षिण कोरिया के (42 फीसदी), जापान (43), अमेरिका (44), ईरान (46), कनाडा (50), जर्मनी के केवल 53 फीसदी लोग ही सरकार द्वारा पर्यावरण के लिए किये जा रहे कामों को लेकर संतुष्ट हैं। वहीं चीन में करीब 85 फीसदी लोगों ने सरकार द्वारा किया जा रहे कामों पर संतोष दिखाया है। जबकि वहां केवल 11 फीसदी लोग असंतुष्ट थे। सऊदी अरब में भी 79 फीसदी लोग संतुष्ट थे। गौरतलब है कि 2019 में अमेरिका के करीब 56 फीसदी लोग सरकार के कामों से असंतुष्ट थे। जबकि 2017 में 52 फीसदी लोगों ने असंतोष जाहिर किया था। इसके पीछे सबसे बड़ी वजह ट्रम्प सरकार को माना जा सकता है। ट्रम्प सरकार तेजी से देश पर्यावरण के लिए बनाये नियमों को बदलती जा रही है। उसका मानना है कि यह नियम विकास की राह में बाधा हैं। गौरतलब है कि कुछ समय पहले अमेरिका ने जलवायु परिवर्तन को रोकने के लिए किये पेरिस समझौते से भी अपने हाथ पीछे खींच लिए थे।

इस सर्वे में भारत को लेकर सबसे हैरानी वाली बात पानी और वायु की गुणवत्ता को लेकर सामने आयी है। हालांकि भारत के ज्यादातर शहरों में हवा तय मानकों से कई ज्यादा गुना प्रदूषित हो चुकी है, और लोगों को सांस लेने में भी कठिनाई हो रही है। इसके बावजूद भारत के करीब 86 फीसदी लोग हवा की गुणवत्ता से संतुष्ट थे7 जबकि केवल 13 फीसदी ने ही इस पर असंतोष जाहिर किया है। ऐसी ही स्थिति चीन की है जहां करीब 81 फीसदी लोग हवा की गुणवत्ता से संतुष्ट थे। जबकि केवल 17 फीसदी लोगों ने ही असंतोष जाहिर किया है। वहीं दुनिया के करीब तीन चौथाई से ज्यादा (78 फीसदी) लोग हवा की गुणवत्ता को लेकर संतुष्ट थे। इसी तरह पानी की गुणवत्ता को लेकर भी देश के करीब 75 फीसदी लोगों ने संतोष जाहिर किया है। जबकि 24 फीसदी ने पानी की गुणवत्ता पर असंतोष दर्ज किया है। विडंबना देखिये ऐसा तब हुआ है जब देश की ज्यादातर नदियों का जल प्रदूषित हो चुका है। और भूजल में आर्सेनिक और अन्य प्रदूषकों की मात्रा बढ़ती जा रही है। हाल ही में पंजाब और उत्तर प्रदेश में भी भूजल में भारी मात्रा में आर्सेनिक पाया गया था। जोकि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। यदि वैश्विक स्तर पर देखें तो दुनिया के करीब 73 फीसदी लोग जल की गुणवत्ता से संतुष्ट हैं। जबकि अफ्रीकी देश गैबोन में केवल 32 फीसदी लोग इससे संतुष्ट हैं। वहीं रूस में 60, ईरान में 64, चीन में 76, दक्षिण कोरिआ में 78, अमेरिका में 83, जापान में 86, कनाडा में 87, जर्मनी में 88, सऊदी अरब में करीब 89 फीसदी लोग जल की गुणवत्ता को लेकर संतुष्ट हैं।

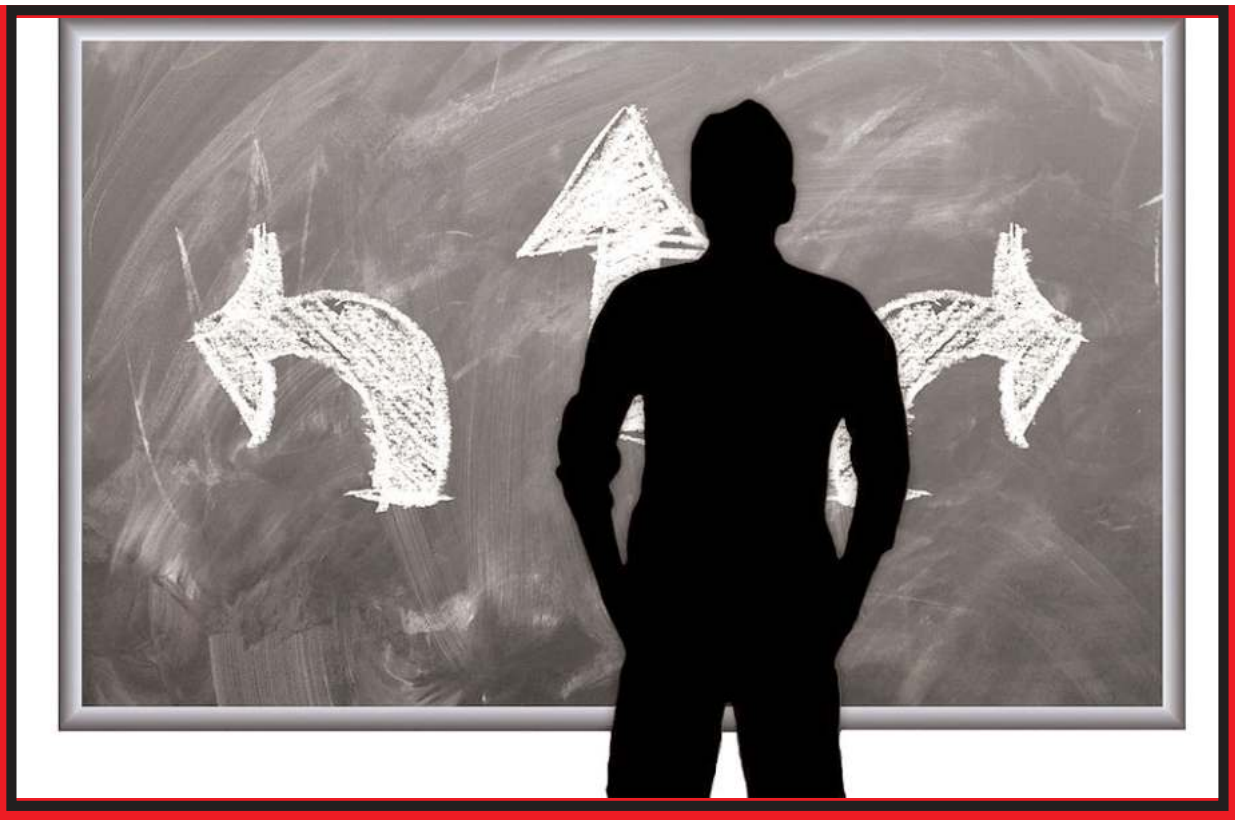

हमारे सोचने समझने की क्षमता को प्रभावित कर सकता है बढ़ता कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर

जर्नल जिओ हेल्थ में प्रकाशित एक नए शोध से पता चला है कि वातावरण में बढ़ता कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर हमारे सोचने समझने की क्षमता को प्रभावित कर सकता है। यूनिवर्सिटी ऑफ़ कोलोरेडो द्वारा किये गए इस अध्ययन से पता चला है कि वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ती जा रही है। यह वृद्धि न केवल घरों के बाहर बल्कि अंदर भी हो रही है।

शोध के अनुसार सदी के अंत तक घरों के अंदर कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर 1400 पीपीएम तक पहुंच जायेगा। जोकि वर्त्तमान में आउटडोर सीओ2 के स्तर से करीब तीन गुणा ज्यादा है। गौरतलब है कि हवाई के मौना लोआ ऑब्जर्वेटरी के आंकड़े के मुताबिक, कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर 415.26 पार्ट्स पर मिलियन (पीपीएम) से ज्यादा हो चुका है। औद्योगिक क्रांति के बाद से इसके स्तर में लगातार वृद्धि हो रही है। आईपीसीसी के अनुमान के अनुसार सदी के अंत तक वातावरण में सीओ2 का स्तर 930 पीपीएम हो जायेगा। जबकि शहरी इलाकों में बढ़कर 1030 पीपीएम तक पहुंच जायेगा। वातावरण में सीओ2 का यह स्तर हमारे सोचने समझने की क्षमता और निर्णय लेने की काबिलियत को प्रभावित कर सकता है।

सामान्य बुद्धिमता को 25 फीसदी तक कम कर सकती है, सीओ2

वैज्ञानिकों के अनुसार 1400 पीपीएम पर सीओ हमारी सामान्य बुद्धिमता को 25 फीसदी तक कम कर सकती है। जबकि जटिल निर्णय लेने की काबिलियत में करीब 50 फीसदी तक की कटौती कर सकती है। इस अध्ययन के प्रमुख शोधकर्ता क्रिस करनौसकर ने बताया कि यह ने केवल बच्चों पर असर डालेगा, बल्कि एक आम इंसान, व्यापारी, वैज्ञानिक, शिक्षक, नीति निर्माता हर किसी पर इसका असर पड़ेगा।

हमारे दिमाग पर कैसे असर करती है सीओ2

यूनिवर्सिटी ऑफ़ कोलोरेडो में प्रोफेसर शैली मिलर के अनुसार किसी बिल्डिंग में वेंटिलेशन बहुत जरुरी होता है। यह इमारतों में जरुरी हवा पहुंचाता है और सीओ2 के स्तर को नियंत्रित करता है। लेकिन जब बिल्डिंग में बहुत ज्यादा लोग रहते हैं, या फिर वहां वेंटिलेशन की सही व्यवस्था नहीं होती। तो ऐसे में सभी के लिए पर्याप्त ऑक्सीजन और ताजी हवा नहीं मिल पाती। ऐसे में हम सांस के जरिये अधिक मात्रा में सीओ2 लेने लगते हैं। जिससे हमारे रक्त में कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर बढ़ जाता है। ऐसे में हमारे दिमाग तक पहुंचने वाली ऑक्सीजन भी कम हो जाती है। जिसके चलते हमें नींद आने लगती है। साथ ही दिमागी तनाव भी बढ़ जाता है। वहीं इसका असर हमारे सोचने समझने की क्षमता पर भी पड़ने लगता है। शोधकर्ताओं के अनुसार बाहर के मुकाबले घर के अंदर सीओ2 की मात्रा अधिक होती है। जबकि शहरी इलाकों में ग्रामीण की तुलना में सीओ2 का स्तर अधिक होता है। हालांकि बिल्डिंग के बाहर और अंदर कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा बराबर होती है। पर बिल्डिंग में मौजूद लोग जो सांस के साथ इसे छोड़ते हैं उससे वहां सीओ2 की मात्रा में वृद्धि हो जाती है।

क्या है इससे बचने का सबसे बेहतर उपाय

शोधकर्ताओं का मानना है कि इनडोर सीओ2 के स्तर में कई तरीकों से इजाफा किया जा सकता है। पर इसका सबसे अच्छा तरीका है कि इसे हानिकारक स्तर पर पहुंचने से पहले ही रोक दिया जाए। जिसके लिए जीवाश्म ईंधन से होने वाले उत्सर्जन में कमी लाना सबसे बेहतर उपाय है। उनके अनुसार इसके लिए पेरिस समझौते में जो मार्ग सुझाया गया है, उसका सभी को पालन करना होगा।

करनौसकर और उनकी टीम के अनुसार यह एक जटिल समस्या है। इस शोध के नतीजे शुरुवाती हैं। अभी इसपर और काम करना बाकी है। पर इतना जरूर है कि जलवायु परिवर्तन के कुछ ऐसे भी प्रभाव हैं जो अभी सामने नहीं आये हैं। सीओ2 का हमारे सोचने समझने और निर्णय लेने की क्षमता को प्रभावित करना ऐसा ही एक असर है। जिसपर आगे भी और अध्ययन करने की जरुरत है। इसका असर हमारी सोच से कहीं ज्यादा जटिल है।

लॉकडाउन के चलते साफ हुई उत्तर भारत में हवा, 20 सालों में पहली बार एयरोसोल में इतनी कमी

कोरोनावायरस के संक्रमण को रोकने के लिए किये गए लॉकडाउन का एक और सकारात्मक पहलु सामने आया है। उत्तर भारत में जो हवा पिछले 20 सालों के दौरान किये गए प्रयासों से साफ नहीं हुई। वो देश में तालाबंदी के चलते साफ हो गयी है। गौरतलब है कि 25 मार्च 2020 से भारत सरकार ने देश में तालाबंदी कर दी है। जिसका उद्देश्य कोरोनावायरस के संक्रमण को रोकना था। इस तालाबंदी के चलते देश कि हवा भी साफ हो गयी है। नासा द्वारा जारी उपग्रहों से प्राप्त आंकड़ों से पता चला है कि उत्तर भारत में एयरोसोल का स्तर पिछले 20 सालों के सबसे न्यूनतम स्तर पर आ गया है। जिसके पीछे लॉकडाउन एक बड़ी वजह है। क्योंकि इसी के चलते देश में फैक्ट्री, कार, बस, ट्रक, विमान और अन्य सेवाएं बंद कर दी गयी थी।

इससे पहले दिल्ली की हवा इतनी दूषित हो गयी थी कि उसकी वजह से दिल्ली को दुनिया के सबसे प्रदूषित शहरों में गिना जाने लगा था। लेकिन तालाबंदी के बाद से दिल्ली की हवा में भी काफी सुधार आया है। गौरतलब है हर साल मानव निर्मित एयरोसोल के चलते देश के कई शहरों में हवा कि गुणवत्ता ख़राब हो जाती है। यह एयरोसोल हवा में घुले वो तरल और ठोस कण होते हैं जो हमारे शरीर में फेफड़ों और दिल को नुकसान पहुंचा सकते हैं। इनमें से कुछ एयरोसोल तो जंगल में लगने वाली आग, धूल भरी आंधी और ज्वालामुखी की राख आदि से निकलते हैं। जबकि कुछ इंसानों द्वारा उत्सर्जित होते हैं जैसे फसलों को जलाना, फैक्ट्रियों और वाहनों से निकले धुंए और प्रदूषकों से फैलते हैं।

पहली बार दिखी इतनी साफ हवा

नासा की यूनिवर्सिटीज स्पेस रिसर्च एसोसिएशन के वैज्ञानिक पवन गुप्ता ने बताया कि, हमें यह तो पता था कि लॉकडाउन के चलते कई जगह पर प्रदूषण के स्तर में कमी आएगी लेकिन वर्ष के इस समय में यह उत्तर भारत में इतनी हो जाएगी, इसकी उम्मीद नहीं थी। हाल ही में उससे जुडी कुछ तस्वीरें भी नासा ने साझा कि हैं जिसमें साफ तौर पर देखा जा सकता है कि तालाबंदी के बाद से हवा में मौजूद एयरोसोल कि मात्रा में रिकॉर्ड कमी आयी है। आमतौर पर साल के इस समय 31 मार्च से 5 अप्रैल के बीच एयरोसोल का स्तर ज्यादा रहता है। पर इस साल 2020 के दौरान इसमें कमी देखने को मिली है।

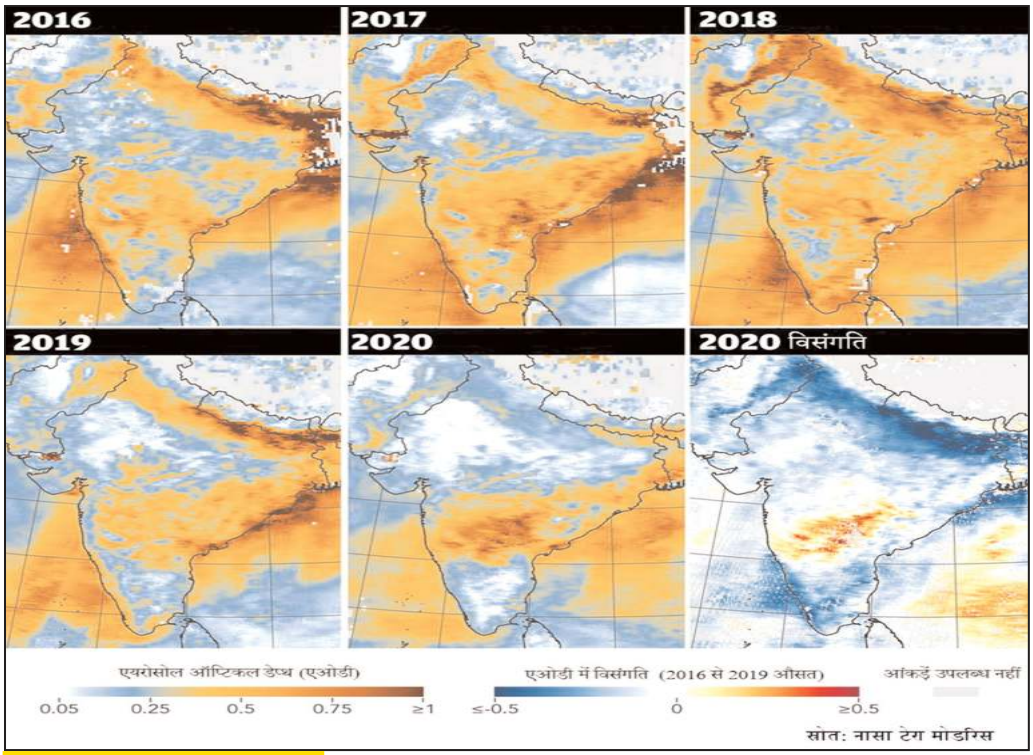

प्रदूषण की गिरावट में है लॉकडाउन की बड़ी भूमिका

गुप्ता के अनुसार लॉकडाउन के तुरंत बाद से प्रदूषण में आ रही गिरावट को मापना कठिन था। हालांकि हमने लॉकडाउन के पहले हफ्ते में ही प्रदूषण में गिरावट दर्ज की थी पर वो लॉकडाउन और बारिश के सामिलित प्रभाव के कारण हुआ था। 27 मार्च को उत्तर भारत में भरी बारिश हुई थी जिसके चलते प्रदूषण में गिरावट आ गई थी। हालांकि मुझे यह जानकर हैरानी हुई की प्रदूषण में आ रही यह गिरावट बारिश के बाद भी जारी रही थी।

नासा द्वारा जारी इन 6 नक्शों के लिए डेटा को टेरा उपग्रह पर मॉडरेट रिज़ॉल्यूशन इमेजिंग स्पेक्ट्रोमाडोमीटर द्वारा प्राप्त किया गया है। इन 6 में से पहले 6 नक्शे 2016 से 2020 के बीच एयरोसोल ऑप्टिकल डेप्थ (एओडी) को दिखाते हैं। जबकि अंतिम मैप 2016 से 2020 के बीच विसंगति को दर्शाता है। गौरतलब है कि एओडी की मदद से यह मापा जा सकता है कि एयरोसोल प्रकाश को अवशोषित या प्रतिबिंबित कैसे करतें हैं। जब एयरोसोल सतह के पास होते हैं तब एओडी की माप 1 या उससे ऊपर होती है। जिसका अर्थ होता है वायु धुंधली है जो कि प्रदूषण को दिखाती है। वहीँ जब ऑप्टिकल डेप्थ वातावरण में ऊर्ध्वाधर रूप से 0.1 या उससे कम गहरी होती है। तो हवा को स्वच्छ माना जाता है। जब 2020 में एयरोसोल ऑप्टिकल डेप्थ को देखा गया तो लॉकडाउन के दिन यानि 25 मार्च को यह उत्तर भारत में 0.3 थी। जोकि 1 अप्रैल को 0.2 और 5 अप्रैल तक 0.1 पर पहुंच गयी थी। जिसका साफ़ मतलब है कि इस दौरान हवा साफ़ हो रही थी। वैज्ञानिकों के अनुसार सामान्यत: उत्तर भारत में बसंत के मौसम में शहरी क्षेत्रों में एयरोसोल की मात्रा बढ़ जाती है। जोकि थर्मल पावर प्लांट, वाहनों और उद्योगों से निकलने वाले नाइट्रेट्स और सल्फेट्स के कारण होता है। जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में चूल्हे और फसलों के जलने से बढ़ जाता है। पर तालाबंदी के चलते इन सब पर रोक लगा दी गई थी जिस वजह से एयरोसोल में गिरावट आ गई। गुप्ता के अनुसार यही वजह थी की अप्रैल की शुरुवात में उपग्रहों से प्राप्त आंकड़ों से साफ दिख रहा था कि प्रदूषण पिछले 20 सालों के न्यूनतम स्तर पर चला गया है। इसके साथ ही जमीन पर मौजूद स्टेशनों ने भी प्रदूषण के कम होने की जानकारी दी है। हालांकि दक्षिण भारत में कहानी कुछ अलग है। डाटा के अनुसार वहां प्रदूषण का स्तर अब भी कम नहीं हुआ है। वास्तव में वो पिछले चार वर्षों की तुलना में थोड़ा अधिक है। हालांकि उसके बारे में पूरी तरह कुछ नहीं कह सकते पर शायद यह मौसम, खेतों में लगायी आग या फिर हवा और अन्य कारकों से हो सकता है।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008